उद्घाटन

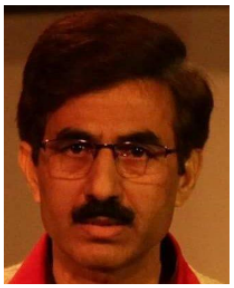

हिन्दी ADDA

एम हनीफ मदार

उद्घाटन

आफिस से छुट्टी ले रखी है। पहलवान जी का आग्रह ही ऐसा था कि ठुकरा ही न सका। दो दिन पहले ही बता दिया था पहलवान ने, "बड़े बाबू! परसों राजू की चाय की दुकान का उद्घाटन होना है, आप वहाँ रहोगे तो हम दोनों को ही खुशी होगी। अभी से

इसलिए कह दिया है ताकि आप ऑफिस से छुट्टी ले लें... क्योंकि ग्यारह बजे का टायम है...।"

तब तक राजू ने चाय उठाकर मुझे दे दी थी। मैं चाय की चुश्की के साथ, छुट्टी लेने न लेने का फैसला कर पाता कि, पहलवान ने मुझे भाँपकर ताबूत में आखिरी कील ठोंक दी। "सोचो नहीं बड़े बाबू! भई अब तक आप मेरे हाथ की बनी चाय पी रहे हो। अब मैं चाहता हूँ कि राजू की दुकान की पहली चाय आप ही पियें। क्यों रे राजू! सही है न।" इस पर राजू ने भी विनय मुस्कान के साथ सिर हिला दिया। उस समय राजू की आँखों के उस दयनीय भाव ने मुझे अन्दर तक ऐसा पिघला दिया था कि मुझे छुट्टी करने का फैसला लेना ही पड़ा, वैसे भी पहलवान की घुमावदार बातों के जाल से बच निकलना इतना आसान भी तो नहीं है। पूरा किस्से बाज है।

पहलवान के किस्सों की वजह से ही तो मेरा उसकी चाय की दुकान पर बैठना शुरू हुआ। प्राइवेट नौकरी, मालिक के दवाव और हजारों लमझझड़ों से चैन पाने के लिए कोई तो ठिकाना चाहिए ही था। तो पहलवान की दुकान से अच्छा और क्या था, जहाँ बातों के साथ चाय की चुश्की की संगत भी मिल जाती थी। सच कहूँ तो वहाँ बैठना शुरू होने के बाद मेरी ऑफिस का समय लगभग एक घण्टा बढ़ गया है। या तो सुबह जल्दी जाना और पहलवान से एक घण्टा बतियाना या लौटते में एक घण्टा बतियाकर घर पहुँचना। और फिर जहाँ इन्सान किसी से अपनी अगली-पिछली, अच्छी-बुरी बातों के साथ उन बातों और घटनाओं को भी बाँट ले जिन्हें वह अपने अन्तर्मन पर किसी भारी बोझ की तरह रखने को विवश हो। वहाँ एक दूसरे पर कुछ अधिकार अपने आप पनप ही जाते हैं।

पहलवान को लोग अक्खड़ कहें, कूढ़ मगज कहें या बड़बोला, लेकिन मेरी नजरों में उसकी बहुत इज्जत है। कुछ भी हो लेकिन मन का बड़ा साफ है। एक दिन दुकान के सामने सहारा समय के आफिस की चाय की उधारी लिखने के लिए, चीटे जैसी खिंचती टांगों को देख में हँस पड़ा। पहलवान चौंककर मेरी ओर देखने लगा "क्या हुआ बड़े बाबू आज चीनी ज्यादा डल गई क्या...?" मैंने अपनी हँसी को जबरन दबाते हुए कहा "अरे पहलवान ऐसा तो हो ही नहीं सकता, मशीन गड़बड़ कर सकती है लेकिन पहलवान के हाथ चीनी डालने में गड़बड़ करें ऐसा कहाँ सम्भव है।" पहलवान को लगा मैं जरूर उस पर व्यंग्य कर रहा हूँ।" बड़े बाबू मजाक मत बनाओ बताओ भी।"

"मैं तो यह सोच रहा हूँ कि शरीर जितना पुख्ता और मजबूत बना रखा है उसके साथ अगर थोड़ी सी पढ़ाई और कर ली होती, तो कम से कम यह चींटे की सी टाँगे तो नहीं काढ़ते।" कहकर मैं तो हँसने लगा लेकिन पहलवान कुछ गम्भीर हुआ। उसकी शक्ल देखकर मैं किसी अपराध बोध का अनुभव करने लगा। मुँह की हल्की मीठी चाय कसैली सी लगने लगी। पहलवान ताड़ गया मेरी स्थिति को सो मुस्करा उठा।

"ऐसी बात नहीं है बड़े बाबू! पढ़ने तो हम भी गये थे और तीसरी चौथी तक अपनी कक्षा में सबसे होशियार भी रहे अरे वह क्या कहते हैं... मॉनीटर रहे। हाथ-पैर तो बचपन से ही मजबूत थे। होते क्यों नहीं, पैदा ही भैंसों के बीच हुए।"

सुनकर मैं चौकन्ना हुआ **"क्या कहा... भैंसों के बीच?"**

"हाँ तो और क्या? मेरी दादी बताती थीं कि जब मैं पैदा हुआ था तब मेरी अम्मा पानी पिलाकर भैंसों को बाँध रही थी, वहीं दर्द उठा था, और बताती थीं कि जब तक मैं कुछ कर पाती कि तू वहीं गोबर में ही पैदा हो गया था।" कहकर मेरे साथ पहलवान भी देर तक हँसा। "घर में आठ-आठ - दस-दस दुधारू भैंसे रहती थीं। पिताजी दूध का काम करते थे। जहाँ आप रहते हो न बड़े बाबू, वहाँ तक हमारी ही भैंसों का दूध आता था। यह बात एक दिन पिताजी ने ही बताई थी जब वे और मैं एक शादी से लौटते समय लक्ष्मीनगर से गुजरे थे।" पहलवान ने चाय छानी गिलास में डाली और फिर शुरु...।

"तो बड़े बाबू! बुरा न मानना, कि आपने अभी तक उतना पानी भी नहीं पिया होगा जितना मैंने दूध पी रखा है, वह भी निपनिया। अब तो ससुरा खोजे से भी नहीं मिलता। उस दूध का ही कमाल था कि मैं उम्र से पहले बड़ा दिखने लगा था। कहें तो अपनी कक्षा में ऊँट सा दिखता था मैं। पिताजी ने इसका फायदा उठाकर, मास्टरों को कुछ दे दिवाकर, एक साल निकलवाकर, छटवीं में कालेज में दाखिला करा दिया। बड़े बाबू अब हम थे तो बच्चे ही, शरीर ही तो तगड़ा हो गया था, इसलिए कालेज जाते बड़ा डर लगता था। हम कालेज जाने से ही कतराने लगे। एक दिन पड़ौसी गाँव के जोगेन्द्र जी जो हमारे यहाँ से दूध लेकर शहर जाते थे उन्होंने हमें घर देखकर पूछा, "क्यों रे! स्कूल नहीं गया?" हम कुछ बोलते कि पिताजी बोले "अभी नया-नया कालेज गया है, सो डरता है वहाँ बड़े-बड़े लड़कों को देखकर।"

"अरे तो डरने की क्या बात है वहाँ अपना गोलू भी तो पढ़ता है। मुलाकात करा देंगे उससे। वह तो वहाँ कई सालों से पढ़ रहा है।**"**

"दूसरे दिन हमारी दोस्ती गोलू से करा दी गई।" इतना कहकर पहलवान ने काम करते अपने हाथों से सामान ऐसे छोड़ दिया जैसे किसी जज ने फैसला लिखकर कलम तोड़ी हो। पहलवान लम्बी साँस भरकर बड़ा ठण्डा सा बोला "बस, यहीं से सब गड़बड़ हो गया था बड़े बाबू।" मुझे लगा पहलवान अब चुप हो जायेगा जबकि मुझे उसकी बातों में आनन्द आ रहा था। वैसे भी उस दिन इतवार था और पत्नी अपनी माँ से मिलने कृष्णानगर चली गई थी। घर पर कोई था नहीं, सो मेरा टाइम भी अच्छा खासा पास हो रहा था। अब तक लगभग ठीक दोपहर हो चला था। ग्राहकों की आवाजाही भी लगभग न के बराबर रह गई थी। बाहर सड़कों पर धूप का भयंकर तांडव हो रहा था। गोया खुली आँखों से देखना भी दूभर था। दरवाजे पर चलते कूलर की वजह से दुकान में कुछ राहत थी। इसलिए इससे अच्छी जगह उस दिन के समय को काटने के लिए कोई दूसरी नहीं थी। चाय मेरी कमजोरी थी जो लगातार मिल ही रही थी। मैंने उसे फिर छेड़ दिया "पहलवान आखिर हुआ क्या?" पहलवान ने दूसरी चाय चढ़ाई और मेरे सामने किसी पेड़ के तने सी जाँघें फैलाकर बैठ गया और वहीं से शुरू हो गया।

"बड़े बाबू! गोलू पढ़ता लिखता तो था नहीं। हाँ स्कूल में उसकी दादागीरी खूब चलती थी। इसीलिए दसवीं में कई साल से फेल हो रहा था। स्कूल उसे निकाल भी नहीं सकता था। स्कूल कस्बे के उस इलाके में था जहाँ गोलू के मामा जी रहते थे। वे किसी पार्टी के नेता थे। उन्हीं के दबदबे के कारण गोलू स्कूल में कम, आवारागर्दी और मारपीट करने में ज्यादा रहता था।

चाय खौलने लगी तो पहलवान, चाय उतारने को उठा। उस दिन न जाने क्यों मुझे पहली बार लगा जैसे वह पहलवान न होकर किसी सर्कस का हाथी हो जो स्टूल पर बैठकर अपने करतब दिखा रहा था। उस दिन मैंने अपने आपको बड़ा मरियल सा महसूस किया था।

पहलवान दो गिलासों में चाय ले आया। मैंने चाय पीनी शुरू की। पहलवान अपनी चाय ठण्डी करने को कूलर के सामने रखकर फिर शुरू हुआ।

"बड़े बाबू! गोलू के साथ रहकर हमें भी मजा आने लगा था। अब स्कूल कब खुल रहा है। कब बन्द हो रहा है। हमें पता ही नहीं चलता था। हम पहले साल में ही छटवीं में फेल हो गये। लेकिन, हमें तमगा मिल गया था, पहलवान जी का। असल में, गोलू की तो तुम्हारी तरह खाल में हड्डियाँ बंधी थी। लेकिन मजाल कि कोई उसे उँगली भी टच कर सके, और अगर भूल से किसी ने ऐसा किया भी, तो शाम तक तो उसके

हाथ पैर टूटने तय थे। यह मामाजी का प्रताप था। उसके साथ छोटी-मोटी मारपीट मैं भी कर लेता था सो उसी ने सबसे पहले मुझे पहलवान कहना शुरू किया था, और तब से आज तक बस पहलवान ही बने हुए हैं।"

पहलवान ने चाय उठायी और एक साँस में पीकर गिलास खाली करके रख दिया "यह बचपन की दूध पीने की आदत है। अब सुसरा दूध इस मूत में बदल गया है।"

पहलवान की इस बात ने मेरे मुँह का जायका बिगाड़ दिया। मैं हँस भी न सका, तो खुद ही हँस दिया और बोला "माइन्ड मत करना बड़े बाबू! अपनी तो यह आदत है जी।" उसकी बात भी सही थी। पहलवान अक्सर ऐसी ही ऊट-पटाँग बातें या अश्लील शब्द बातों ही बातों में ऐसे शामिल कर देता है, जैसे वे शब्द भी उन बातों के ही अंग हों। बड़े बाबू! अब हम नहीं पढ़े तो न सही, पर तुम्हारी कृपा से साले तीनों बच्चों को पढ़ा रहा हूँ चाहे मुझे आधी-आधी रात तक चाय बेचनी पड़े। कहकर नीम की शाखों जैसी काली भुजाओं पर ऐसे हाथ घुमाकर मालिश सी करने लगा, जैसे कुश्ती की त्यारी में हो।

वैसे तो पहलवान की सब बातें ठीक लगतीं लेकिन उसे मुसलमानों से बड़ा परहेज था। इस बात पर कभी-कभी मेरी उससे बहस भी हो जाती जब पहलवान कहता "बड़े बाबू ऐसा दिन कब आयेगा जब हिन्दुस्तान में एक भी मुसलमान न मिले।" मैं उस पर हँसता और कहता "पहलवान ऐसा दिन कभी नहीं आयेगा क्योंकि भारत के संविधान में, भारत को धर्म निरपेक्ष देश कहा गया है, जहाँ हर धर्म जाति के लोगों को साथ रहने का अधिकार दिया गया। समझे...।"

पहलवान तड़फ उठता "गलत कहते हो बड़े बाबू! पहले हम भी मामा जी से यही कहते थे कि हमारे गाँव में सलीम मिस्त्री रहता है। उससे किसी को कोई परेशानी नहीं है। इस बात पर वे पहले हमें डांटते फिर समझाते तब हमारी समझ में आ पाया था।"

"क्या समझाते थे...?"

"यही कि औरंगजेब ने कितने हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। ... और ये सब उसी के वंशज हैं। हमारे ही नेताओं ने गलती की, नहीं तो जब बंटबारा हुआ तब ही इनको ढूँढ-ढूँढ कर पाकिस्तान भेज दिया जाता।"

मैं उसे डपटता **"**पहलवान तुम वे सिर-पैर की बातें क्यों करते हो**?"**

"कुछ भी हो लेकिन अब हमारा मन इन पर विश्वास कर ही नहीं पाता।"

"विश्वास न करने की कोई वजह भी तो हो।"

"क्यों, हम तो साले अनपढ़ हैं लेकिन तुम तो पढ़े लिखे हो। सब पढ़ा होगा... क्या मामा जी झूठ बोलते थे...?"

"पढ़ा है पहलवान तभी तो...।"

"तो बताओ... जरा मैं भी तो सुनू।"

"पहलवान उस समय की परिस्थितियाँ अलग थीं हिन्दू समाज में ऊँच-नीच, छुआ-छूत बहुत ज्यादा थी। छोटी जात का आदमी, बड़ी जात वाले के साथ बराबर बैठ नहीं सकता था। वहीं इस्लाम में कहा जाता था कि जिसने कलमा पढ़ लिया, वह एक हो गया और एक थाली में खा सकता था। इसलिए उस समय अनेक छोटी मानी जाने वाली जातियाँ खुद व खुद मुसलमान होने लगी थीं।" मैं कुछ और ज्यादा न बोलूँ इसलिए पहलवान खुद कह देता, "बड़े बाबू आपका ऑफिस का टाइम हो गया।"

हालाँकि पहलवान ऐसी बातें रोज नहीं करता पर न जाने क्यूँ कभी-कभी उस पर भूत सा सवार होता था इन बातों का। मेरी ऐसी बहसों के बाद धीरे-धीरे उसकी यह आदत खत्म होने लगी थी या जान बूझकर मुझसे ऐसी बातें कम करने लगा था। मुझे भी इससे तसल्ली थी कि चलो पहलवान की सोच बदल रही है।

एक दिन सुबह ऑफिस से लगभग घण्टा भर पहले मैं पहलवान की दुकान पर पहुँचा। मुझे लगा पहवान कुछ धुना-मुनी में है। वह चाय बनाते हुए रोज की तरह ज्यादा बात भी नहीं कर रहा था। हाँ, बार-बार, बड़े काशीफल सी अपनी खोपड़ी के नीचे लगीं, किसी ट्रक की हैड लाइट सी दिखती आँखों से सड़क की तरफ देख लेता। मैंने भी उधर देखा कुछ खास नहीं था। सब रोज जैसा ही लगा वही चीख-पुकार करती भागती कारें, मोटर साइकिलें, वही दुकानों की झाड़-पौंछ, जल के छींटे और धूप। एक दूसरी में खोई बतियातीं सी बेपरवाह कालेज जाती लड़कियाँ। लगातार उन्हें ललचाई और घूरती नजरों से देखती कई जोड़ी आँखें। आखिर मुझसे रहा न गया तो पूछा "क्या बात है पहलवान? कुछ परेशान हो क्या देख रहे हो?" पहलवान चाय छानते बोला "बड़े बाबू उस लड़के को देख रहे हो?"

मैंने दुबारा देखा, सड़क पर एक आठ-नौ साल का बच्चा खड़ा था। "हाँ तो, क्या किया है इसने?"

"यह आज सुबह से ही यहाँ खड़ा है जैसे मुझसे कुछ कहना चाहता है।"

"हाँ तो बुला लो उसे पूछ लो।"

"यह बात तो ठीक है बड़े बाबू! लेकिन पता नहीं ससुरा कौन होगा...?"

"मतलब...?" मैं चौंका।

"मेरा मतलब है, किस जाति का है...?"

'कुत्ते की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ी ही रही।' मैंने मन ही मन कहा। "ठीक है मैं बुलाकर पूछता हूँ।"

मेरे इशारे से लड़का मेरे पास आ गया। हरे रंग का नेकर जो मैल के कारण स्लेटी लगता था। ढीली बड़ी सी कमीज, नंगे पैर की एक उँगली में, घाव पर मिट्टी की परत सी चढ़ी थी। खुश्की से चटकी परत से झाँकते खून पर मक्खियाँ बार-बार आ बैठतीं। वह दूसरे पैर से उन्हें बार-बार हटाता। होठों पर जमी पपड़ी को वह जीभ की नमी से दूर करने की असफल कोशिश करता। मेरे पास आने तक उसके मासूम चेहरे पर कुएँ सी दिखती आँखे, मेरे हाथ में लगी चाय तथा दूसरे हाथ में लगे फैन पर से नहीं हट पाईं थीं। "भूखा है। चाय पियेगा...?"

उसने हाँ में सिर हिलाया। जैसे बोल पाने की ताकत उसमें नहीं थी। वह मेरे पास देर तक खड़ा भी नहीं रह सका, आकर नीचे जमीन पर बैठ गया, जैसे वह गिर पड़ा हो।

"पहलवान एक चाय पिलाओ इसे और दो फैन।"

"लेकिन बड़े बाबू! इससे पूछो तो कि यह है कौन ... मेरा मतलव...।"

"पहलवान गिलास के पैसे में दे दूँगा... गिलास दुकान में मत रखना।" मैं उस दिन झल्ला पड़ा था। पहलवान चुप हो गया और किसी उपकरण की तरह चाय बनाकर मेरे हाथ पे सौंप दी। चाय और फैन पर वह लड़का ऐसे झपटा जैसे देर से टकटकी लगाये कुत्ते को फैंकी गई रोटी को, कुत्ता सीधा मुँह में लपकता है। चाय पीकर उसने इधर-उधर ऐसे देखा जैसे किसी अंधे को दिखाई देने लगा हो।

मैंने पूछा "क्या नाम है तेरा...?"

"राजू"

"कहाँ रहता है?"

"मन्टोला।"

"और कौन-कौन है घर में?"

"बस अम्मा।"

"पापा कहाँ है?"

"पता नहीं...।"

"यहाँ खड़ा रहकर क्या कर रहा था?"

"भूख लगी थी।" इस बात पर वह ऐसे सकुचाया था जैसे यह भूख लगने का अपराध उसी से हुआ हो।

"अम्मा क्या करती है?"

"काम पर जाती है... अब बुखार आ गया है।"

उसकी हाजिर जबाबी और निश्च्छल बातें मुझे गहरे रसातल में ले जाने लगी थीं। मुझे नहीं ध्यान रहा था कि मैं ऑफिस को लेट हो रहा हूँ। पहलवान जो अब तक हमारी बातें चुपचाप बड़े गौर से सुन रहा था। उसने मुझे याद दिलाया "बड़े बाबू आपका आफिस...।" मैं जैसे गहरे पानी से ऊपर आया था। "हाँ... जाऊँगा...।" मैं आफिस जाने को उठता कि उस लड़के ने फिर से मुझे रोक लिया।

"मैं काम करूँगा...।"

"काम... क्या काम कर लेगा तू...?"

"गिलास धो दूँगा... चाय दे आऊँगा... झाड़ू-पौंछा सब।"

मैं सुनकर देर तक सोचता रहा। वह चुपचाप टुकुर-टुकुर मेरी तरफ ऐसे ताक रहा था जैसे मैं ही उसकी किस्मत का फैसला करने वाला हूँ। मैं उसकी दयनीय आँखों से डर

सा गया और मुझे विवश होकर पहलवान से कहना ही पड़ा। "पहलवान! रख लो इसे दुकान पर। यार... तुम्हारा भी हाथ बंट जायेगा और इसका भी कुछ भला हो जायेगा। वैसे भी, पहलवान तुम्हें एक लड़के की जरूरत तो है।"

सुनकर पहलवान अचकचा गया... "वह तो ठीक है बड़े बाबू लेकिन... इसका क्या भरोसा... कौन है, कहाँ का है न जात का पता न धर्म का।" कहकर पहलवान अपने काम में लग गया।

"पहलवान! काम जाति धर्म करेंगे या आदमी...। दुनियाँ कहाँ से कहाँ पहुँच गई और तुम अभी तक वहीं के वहीं जड़ की तरह खड़े हो आखिर कब तक...।" मैं पहलवान से इस बात पर फिर भिड़ गया।

पहलवान ने कुछ लचीला रवैया अपनाया, लेकिन, उसने लड़के को जारे देकर पूछा "क्यों रे तू हिन्दू है या मुसलमान बता तभी काम पर रखूँगा...।"

इस बात पर मैं बौखला गया **"**पहलवान हद होती है**,** भला यह बच्चे से पूछने वाली बातें हैं**?"**

"अरे बड़े बाबू**!** आप नहीं जानते**,** ये सब जानते हैं**...।"**

"हाँ तो सिखाता कौन है...? नहीं तो...।" खैर, मुझे लग गया, पहलवान नहीं टूटेगा इसलिए मैनें ही नई युक्ति निकाली "पहलवान यह सिर्फ भूख जानता हैं ...। और फिर नाम राजू है तो जाहिर है कि...।"

"बड़े बाबू आप बच्चों जैसी बातें कर रहे हैं। राजू नाम तो किसी का भी हो सकता है। सामने परचूनी वाले का सामान जो रिक्शे वाला लाता है, उसका नाम राजू है, और वह मुसलमान है।" पहलवान जिद पर अड़ा था कि वह लड़के को काम पर नहीं रखेगा, और मैं कसदन करके इस बात पर आमादा था कि उसे काम पर लगवाके रहूँगा।

"पहलवान! मेरी उम्र का अनुभव कहता है कि यह हिन्दू ही है... इसलिए इसे काम पर रख लो। और अगर कोई और निकले तो जो चाहो सजा मैं भुगतने को त्यार हूँ।" मैंने लगभग आखिरी हथियार चलाया था। लेकिन पहलवान ने पराकाष्ठा कर दी। मैं न जाने कैसे अपने बाल नोंचकर पागल होने से बचा। जब उसने कहा "अच्छा ठीक है बड़े बाबू फैसला अभी होता है... इसे नंगा करके देख लो।" कहकर पहलवान हँसता

हुआ दुकान से बाहर आकर, उसे पकड़कर दुकान के पीछे खींच ले गया। मैं उसे रोकता चिल्लाता रह गया। पहलवान यह ठीक नहीं है। यह अपराध है। तुम्हें नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। मैंने उसे अपनी दोस्ती का वास्ता दिया... लेकिन, तब तक तूफान गुजर गया था। पहलवान मुस्कराता आया बोला "चलो बड़े बाबू आपकी बात मान ली रख लिया इसे काम पर...।"

राजू की आँखें शर्म से खुद में गढ़ी जा रही थी। चाहकर भी वह मेरी आँखों में नहीं झाँक पाया था। उसका विचलन जैसे किसी मौन विवशता में जकड़ा हो। आसमान में न जाने कहाँ से काले सफेद बादलों के झुंड आकर खड़े हो गये थे। लगा जैसे बहती हवा ने रुक कर बादलों को भी रोक लिया है। मैं पहलवान से कुछ कहे बिना निकला और लाश की तरह चलता हुआ ऑफिस पहुँचा। उसके बाद कई दिनों तक मेरा पहलवान के पास जाने को मन नहीं हुआ।

एक डेढ़ हफ्ते बाद पहलवान ने मुझे रोका... "बड़े बाबू! बात तो सुनो मेरी।" मैं अनसुनी करके निकल गया। शाम को उसने मुझे फिर रोकना चाहा तो मैंने अनमने कहा "कल छुट्टी है, कल आऊँगा।"

वैसे भी वक्त का मरहम बड़े से बड़े घाव भर देता है। लगभग पन्द्रह दिनों में, मैं भी उस दिन के अवसाद से कुछ मुक्त हो गया था इसलिए दूसरे दिन पहलवान की दुकान पर पहुँचा था।

"आओ बड़े बाबू!... जयराम जी की... चल रे राजू बड़े बाबू के लिए चाय बना।" पहलवान गल्ले से उठकर मेरे पास आ गया। "साहब की नाराजी दूर हुई कि नहीं?" मैं चुपचाप अन्दर जाकर बैठ गया। असल में राजू को देखते ही मेरे मन में छुपा उस दिन का वही दृश्य दुबारा से चीत्कार कर उठा था। मैं उस चीत्कार से दहशत खाकर फिर वापस आ जाता अगर राजू के चेहरे पर इतनी खुशी न दिखती तो। राजू ने धुले हुए पैन्ट कमीज पहन रखे थे। इन पन्द्रह दिनों में ही उसका वास्तविक रूप रंग बाहर झाँकने लगा था। उसने हँसते हुए हाथ जोड़कर नमस्ते किया। मैनें उसकी पीठ थपथपाई "मजे में है... अब अम्मा कैसी है...।" "ठीक है... काम पर जाने की कह रही थी। मैंने मना कर दिया... क्या करता फिर दुबारा बीमार पड़ जाती...।"

मैं उसकी मासूमियत पर मुस्कराया। तो पहलवान को भी साहस मिला बोलने का "बड़े बाबू साला किस्मत का बड़ा धनी है, जिस दिन से दुकान पर लगा है न जाने कहाँ से ग्राहक टूटने लगे हैं।"

"हाँ अब तुम भी साफ-सुथरे रहने लगे हो... चलो अच्छा है, तुम्हारा काला रंग भी कुछ निखार पा जायेगा।" मेरी इस बात पर पहलवान ठठाकर हँसा। राजू की बत्तीसी भी चमकी। "बड़े बाबू अब पूरा दिन ऑडरों पर चाय चलती ही रहती है।"

"पहलवान! राजू चाय दे आता है, तो ऑर्डर भी आते हैं। पहले अकेले थे। तुम कहीं जा नहीं पाते थे, तो काम भी कम चलता था।"

"यह बात नहीं है बड़े बाबू...।"

"तो...।"

"असल में राजू के आने के बाद भी तीन-चार दिनों तक काम में कोई अन्तर नहीं आया...। उस दिन मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं थी तो मैं नहा कर नहीं आया था। इसलिए मैंने कहा राजू पूजा तू कर ले... बस, इसने पूजा क्या की, कि बस...?" पहलवान ने अपना पूरा भाषण मेरे ऊपर मेरे वौस की तरह झाड़ा।

"पहलवान यह तुम्हारा भ्रम है। अरे तुमने दुकान पर एक लड़का रख लिया, यह लोगों को तीन-चार दिन में ही पता चल पाया होगा... और जब उन्हें पता लगा, तो वे तुमसे चाय भी मंगाने लगे।"

"आप कुछ भी समझें बड़े बाबू, लेकिन मैं रोज पूजा इसी से कराता हूँ। इसकी पूजा और ईमानदारी से भगवान भी इतना खुश है कि मेरा काम...। यही बात उस दिन मामा जी कह रहे थे जब वे यहाँ आये थे।

"क्यों रे राजू! क्या खिला दिया तूने पहलवान को, बड़ी तारीफें कर रहे हैं तेरी।" सुनकर राजू किसी नई दुल्हन की तरह मुस्कराता हुआ शर्माकर खुद में और सिमट सा गया। पहलवान की दुकान पर उन दिनों पहले से ज्यादा अच्छा लगने लगा था। राजू और पहलवान दोनों खुश थे। पहलवान राजू के किस्से सुनाता न थकता था।

उन दिनों दुकान में साफ-सफाई ज्यादा रहने लगी थी तो दो चार ग्राहक भी हर समय बैठे रहते थे। ऐसे समय में, मैं जाता नहीं था। उस दिन आफिस से जल्दी चला आया था। कन्डोलैन्स हो गया था। पहलवान की दुकान कुछ खाली दिखी तो मुड़ गया।

"अरे बड़े बाबू इस समय कैसे...?" शान्त अकेला बैठा पहलवान हरकत में आया।

"चेयर मैन की माँ मर गयी, हमें छुट्टी दे गई तो चला आया। राजू कहाँ गया मैने दुकान में कदम रखते ही पूछा।"

"घर गया है खाना लाने। अब घर जाता है तो, अपना खाना खा आता है मेरा ले आता है। बच्चों के साथ बैठता बतियाता है। बच्चा पूरा भरोसे का है, अरे आप लाख का सामान यहाँ छोड़ जाओ मजाल क्या है कि तनिक भी इसकी नीयत डोल जाय... अब यह सब...।"

"क्या...।" उसकी अधूरी बात सुनकर मैं आशंकित हुआ, कहीं आज इस पर वही भूत तो सवार नहीं।

और अगर ऐसा हुआ तो आज फिर फंस गया। मैं अभी सोच ही रहा था कि

"बात संसकारों की है बड़े बाबू। मामा जी कहते हैं हम तो समझदार हैं तो कोई बात नहीं, लेकिन, अपने बच्चों को इन लोगों से दूर रखकर ही हम अपने संसकार बचाये रख सकते हैं।"

मैं वहाँ से उठकर चला आता लेकिन पहलवान चाय बना चुका था छोड़कर आता तो उसे बुरा लगता फिर राजू का इन्तजार भी था। उससे मिले बिना जाने का मन भी नहीं था। बस इसी लिए कसमसाकर वहीं बैठा रहा। मैंने चाय पीना शुरु ही किया था कि। "नमस्ते जी...।" राजू के मुस्कराते चेहरे को देखकर पहलवान की बातों से भारी हो चुका मेरा मगज कुछ हल्का हो गया। मैंने उसके सिर पर हाथ रखा।

"मजे में है।"

"हाँ जी...।" कहकर मुस्कराते हुए काम में जुट गया। दुकान के दरवाजे की ओर मेरी पीठ थी। पहलवान मेरे सामने आकर बैठ गया था। अचानक पहलवान चीख सा पड़ा "राजू...।" पहलवान के चेहरे की रेखाऐं अजीब तरह विकृत सी दिखीं। मैं हड़बड़ा कर पीछे मुड़ा, देखा वहाँ कोई नहीं था सिवाय सहमे हुए राजू के। हाँ टोपी पहने अगली दुकान की ओर बढ़ते हुए एक आदमी की पीठ जरुर दिखी थी। शायद भिखारी रहा होगा लेकिन मैं कुछ समझ नहीं पाया। मैंने परेशान होकर पहलवान से पूछा "क्या हुआ...?"

कुछ देर तक पहलवान नहीं बोला "इन लोगों से इतनी हमदर्दी ठीक नहीं है...।" कहते हुए उसका मुँह ऐसा लगा जैसे उसने कोई कड़वी दवा पी ली हो। अब मेरी समझ में

आ गया था कि आखिर माजरा क्या है। जरुर राजू ने उस बूढ़े को कुछ दे दिया होगा। उस दिन मुझे न जाने क्या हुआ कि मैने झटके से चाय का गिलास रखा और सीधे पहलवान से पूछा "पहलवान तुम्हें मुसलमानों से इतनी नफरत क्यों हैं?" साथ ही मैं कनखियों से यह भी देखने की कोशिश में था कि राजू इन बातों को सुन तो नहीं रहा है। लेकिन आश्वस्त था कि राजू हमारी इन बातों से, बिल्कुल बेपरवाह बना गिलास धोने में जुटा था। और फिर पंखे की सरसराहट और कूलर की आवाज के कारण उसे हमारी बातें सुनाई नहीं दे रहीं थीं।

बात शुरू करने से पहले ही पहलवान का मुँह कसैला सा होने लगा... "नफरत... बड़े बाबू नफरत है और होनी चाहिए...। यह नफरत ही तो हमको ताकत देती है नहीं तो, ये लोग आज भी हम पर हावी हो जायेंगे...। देखते नहीं इनकी आबादी कितनी तेजी से बढ़ रही है...। जैसे इसी काम पर लगे रहते हैं हर साल एक बच्चा...।" मैं सोच रहा था कि हमेशा की तरफ पहलवान हँसने लगेगा। परन्तु वह गम्भीर था। वह तो और बोलता रहता मैनें ही टोक दिया, "पहलवान! तुम नेताओं वाले भाषण देने लगे।"

"हाँ तो मैं हूँ नेता... अपने गाँव के सेवा दल का अध्यक्ष हूँ।" कहते हुए पहलवान तसल्ली से बैठ गया वैसे भी अब उसे ज्यादा फिकर नहीं थी दुकान की राजू सम्भाल लेता था। अब वह कुछ सहज भी दिख रहा था तो मेरा मन भी हो गया बैठकर सुनने का।

"बड़े बाबू जब हम पढ़ नहीं पाये तो नेतागिरी तो करनी ही थी... और भला हम नहीं करेंगे तो क्या आप जैसे पढ़े-लिखे करेंगे।" कहकर पहलवान हमेशा की तरह हँसने लगा... "बुरा न मानना बड़े बाबू...।" मैं उसकी इस फितरत से तो परिचित था ही सो मैं केवल मुस्कराता रहा वह बोलता जा रहा था। गोलू के मामाजी ने ही नेतागिरी करना सिखाई, और सिखाई क्या नेता बनाया।"

राजू चाय रख गया। पहलवान ने एक चाय उठाकर मुझे दी और एक बड़ी सी चुश्की भरी और "बड़े बाबू! गोलू के मामा, बड़े ज्ञानी आदमी हैं। उनके भाषण सुन-सुनकर मैंने बहुत बातें सीखीं।" पहलवान ने किसी बच्चे द्वारा नाक सुड़कने की सी आवाज के साथ चाय की एक और चुस्की भरी।

"शुरू-शुरू में तो मामाजी की बातें सुनकर मेरा दिमाग खराब होता था। वे हमें बताते कि मुसलमानों ने हमारे देश को किस-किस तरह से लूटा, कितने बड़े बड़े विश्वासघात किये, हमारे मन्दिरों को ही नहीं तोड़ा बल्कि हमारे कितने ही हिन्दू

परिवारों को अपनी ताकत के बल पर मुसलमान बनाया। औरंगजेब इसकी जीती जागती मिसाल है। खुद बाबर ने राम मन्दिर तोड़कर बाबरी मस्जिद बनवाई और आज हम उन्हीं मुसलमानों को अपने साथ बिठाकर, उन पर विश्वास कर रहे हैं। ये आज भी देश भर में आंतकी हमले कर हमारे साथ विश्वासघात कर रहे हैं। ऐसे में भी यदि हमारा खून नहीं खौलता तो हम भारत माँ के सपूत नहीं है। धिक्कार है हमें हमारे हिन्दू होने पर।"

"उनकी बातें सुन-सुनकर मैं परेशान होता। हमारा पड़ोसी था सलीम। मैं सोचता क्या वह हमारे साथ कोई धोखा तो नहीं कर देगा...।"

कोई ग्राहक किसी बात पर राजू से उलझ गया तब पहलवान अपनी बातों को बीच में रोककर राजू के पास उठ गया। मेरे अन्दर जैसे कहीं शीशा पिघलने लगा उसकी तपिश मेरे भीतर एक अजीब विचलन की स्थिति पैदा करने लगी। मैं परेशान था यह सोचकर कि किस तरह पहलवान जैसे सीधे-साधे लोगों को इस हद तक बरगला दिया जाता है।

पहलवान वापस आया तो मैंने पूछा **"**गोलू के मामा कितने पढ़े लिखे हैं**?"**

"वे कितने पढ़े हैं यह तो नहीं पता हाँ लेकिन वे कहते हैं कि नेता को पढ़ा-लिखा होना क्या जरूरी है। और उनकी बात सही भी है। हमारे विधायक जी तो खुद अपना नाम नहीं लिख सकते तो क्या हुआ?" कहकर पहलवान हँसा, मैंने भी मुस्कुराकर साथ दिया।

"एक दिन गोलू ने कहा मामाजी पहलवान ने स्कूल छोड़ दिया है। कोई बात नहीं इसे नेता बना देते हैं। मैं इलाके में मामाजी की धाक से अचम्भित तो पहले ही था, मैंने कहा कैसे? वे बोले तुम्हारे गाँव में एक सेवादल का संगठन बनवा देते हैं। तुम उसके अध्यक्ष होगे और बड़े बाबू! तीसरे दिन तो मामाजी ने गाँव में मीटिंग करके, हम कई लड़कों का एक दल बना दिया। उन्होंने बस अपना एक भाषण दिया और सब मान गये। मुझे उसका अध्यक्ष बना दिया। मामा जी मीटिंग में बड़ी गहरी गहरी बातें सिखाते-समझाते जो हम गँवारों की समझ में नहीं आती थीं। तब अंत में उन्होने एक मत्र सिखाया कि मुसलमानों पर शक करना भी पुन्य का काम है इसे भी देश भक्ति कहा जाता है।"

"पहलवान फिर चाय की दुकान**...** तुम तो मामाजी की तरह नेता बन गये थे।**"**

"यह सब पिताजी की मेहरबानी है उन्हें मेरी बात कभी समझ ही नहीं आई।"

"कैसे... मैं समझा नहीं।"

सलीम का हमारे घर में ज्यादा आना जाना था। सेवादल के साथियों को यह सब बुरा लगता था एक दिन मैंने पिताजी से कहा "बापू सलीम का हमारे घर में आना जाना ठीक नहीं है?"

"क्यों रे ...? क्या बात है...? क्या हुआ है...?" पिताजी चौंक पड़े।

"इस पर भरोसा करना ठीक नहीं है।"

"आखिर हुआ क्या है, कुछ बताएगा भी या ऐसे ही?"

"क्योंकि यह मुसलमान है...। और हमारा इतिहास कहता है कि...।" मैं बस इतना ही कह पाया था कि पिताजी बमक पड़े -

"उल्लू के पठ्ठे, साले गँवार, खुद तो छटवीं में फेल हो गया और हमें इतिहास पढ़ायेगा...।" पिताजी ने सैकड़ों गालियाँ सुनाईं। बोले "गाँव में दुकान खुलवाउँगा तेरे लिए तब तेरी नेतागीरी ढीली होगी।"

"बड़े-बाबू! हम कुछ दिन के लिए शान्त हो गये इस डर से कि, यदि, पिताजी ने दुकान के काम में फँसा दिया, तो हो गई भारत भूमि की सेवा। लेकिन मुझे सलीम या उसके घर वाले दिखते तो खलबली सी होती। अब मेरी पिताजी से कहने की हिम्मत नहीं थी। यह हालत केवल मेरी ही नहीं थी, हमारे सब साथियों की थी। मेरी तरह सबको घरों पर फटकार ही मिली थी।" पहलवान बहुत देर बाद हँसा था। एक पल शान्त रहकर फिर गम्भीर हुआ और मेरे और करीब आकर धीरे से बोला "गाँव भर में इस मुसल्ले का इतना सम्मान और हम साले इसके लिए फटकार खायें। मैंने सेवा दल की मीटिंग में यह बात कही तो एक योजना बनी" इतना कहकर पहलवान ने इधर-उधर देखा फिर मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर फुसफुसाया "उसी रात हमने उसके घर में आग लगा दी।"

"क्या...?" मैं लगभग उछल पड़ा। एक पल को पहलवान मुझे दरिन्दा लगने लगा जैसे वह मेरे सर पर फरसा ताने खड़ा हो। मैं तब और डर गया जब पहलवान मुझे इस हालत में देखकर हँसने लगा। "अरे बड़े-बाबू यह बात बहुत पुरानी हो गई, असली बात तो आपने सुनी नहीं। आप तो ऐसे बबक पड़े जैसे वह घर आपका ही हो। कहकर

वह फिर हँसा। मैं सहज हुआ तो पहलवान बोला। "हम तो आग लगाकर भाग गये थे तब तो किसी को पता भी नहीं चला था कि यह सब हमने किया है। लेकिन न जाने कैसे, पिताजी भाँप गये थे। हम तो तीन दिन बाद, जब गाँव लौटे तब हमें पता चला था कि घर में कोई नहीं बचा।"

"फिर...?" मैं स्तब्ध... बहुत हिम्मत के बाद बस इतना ही कह सका।

"फिर क्या पिताजी ने घर में नहीं घुसने दिया। कह दिया मेरे लिए तू मर गया। भला हो मामा जी का कि उन्होंने यह दुकान दिलवाई। चाय की दुकान इसलिए खोल ली थी कि और कुछ तो हमें आता नहीं था।"

"तुम्हारे पिताजी...?" मैंने लम्बी साँस खींची थी जैसे देर से पानी में डुबकी लगाये था, जब दम घुटने लगा तो एक दम से बाहर निकला हूँ।

इतनी देर में पहली बार पहलवान के चेहरे पर किसी अवसाद की छाया सी दिखी थी। "पिताजी उसके बाद बीमार पड़ गये थे। मैं कई दफा रात में उनसे मिलने गया। उन्हें शहर लाकर इलाज कराने की जिद भी की.... लेकिन उन्होंने मुझसे बात करना भी बन्द कर दिया था। बोले थे - 'तू मेरा बेटा नहीं हो सकता... और बोले... तू... तू मेरी चिता को आग मत देना, नहीं तो मैं ईश्वर को जबाब नहीं दे पाऊँगा।' हमारा एक नौकर ही उनकी और भैंसों की देखभाल करता रहा और एक दिन...।

एकदम से पहलवान की गर्दन ऐसे लटकी जैसे उसे गहरा सदमा लगा हो... वह मुँह लटकाये ही धीरे से बोला "बड़े बाबू! फिर मैं वहाँ जाकर क्या करता....?" मुझे लगा जैसे उसकी आवाज भर्रा रही है लेकिन अगले ही पल उसने अपने सिर को अजीब तरह से झटका दिया, और छाती फुलाता बोला, जो भी हो, खुशी इस बात की है कि गाँव में एक भी...।"

मैं पहलवान की पूरी बात सुने बिना ही उठा बाहर राजू की नमस्ते का जबाब देता चला आया था पहलवान की कहानी का क्लाइमैक्स हो चुका था लेकिन मैं बौराया सा हो गया था।

उसके बाद एक बार फिर मेरा मन पहलवान की दुकान पर जाने का नहीं हुआ। मैं यह मानने को त्यार नहीं हो पाता था कि पहलवान ने वाकई ऐसा किया होगा? यदि हाँ तब तो वह आदमी पास बैठने या बिठाने लायक है ही नहीं। फिर सोचता नहीं... नहीं

ऐसा जघन्य अपराध पहलवान नहीं कर सकता। बस यूँ ही शेखी बघारने के लिए कहता है।

इसी ऊहापोह में मैं महीनों उसके पास नहीं जा पाया। कोई फैसला कर ही नहीं पा रहा था मैं, कि एक दिन अखबार की खबरों ने मुझे परेशान कर दिया। मन्टोला में साम्प्रदायिक दंगा। कुछ लोगों ने एक स्कूल बस पर हमला बोल कर उसमें आग लगा दी। बस में कुछ बच्चे सवार थे। मन्टोला क्षेत्र में पुलिस, पी.ए.सी. तैनात कर दी गई है। बस में से जो बच्चे जान बचाकर किसी तरह भाग निकले थे उनमें से दो बच्चों का अभी तक पता नहीं। बस में सभी बच्चे हिन्दू परिवारों के थे।

समाचार की इस आखिरी लाइन ने मुझे बौखलाने को मजबूर कर दिया। "यह भूमिका है समाचार-पत्रों की समाज के प्रति। क्या आखिरी लाइन लिखना आवश्यक था..? अरे बच्चे सिर्फ बच्चे होते हैं, हिन्दू या मुस्लिम नहीं। इससे, आग और भड़के, इनकी सेहत पर क्या फर्क है। इनके लिए तो यही मसाला है।" मैं कमरे में अकेला ही बड़बड़ा उठा कि तभी मुझे राजू का ध्यान हो आया... राजू भी तो मन्टोला में ही रहता है। बस इतना सोचते ही मैं पहलवान की दुकान की तरफ लपका।

पहलवान की दुकान बन्द देखकर मेरी उखड़ी सांसे और भारी होने लगीं। न जाने कितनी शंका-आशंकाओं का बोझ मैं अपनी साँसों में महसूसने लगा। यहाँ बाजार रोज की तरह ही रोशन था लेकिन एक सहमापन सा सबके बीच घूम रहा था। चेहरों पर दहशत और दर्द की लकीरें एक साथ उभर रही थीं। "यह अच्छा है कि बाजार खुल रहा है।" मैं बुदबुदाया लेकिन मुझे तसल्ली नहीं हो पा रही थी।

मन शंकाओं से घिरा जा रहा था "मन्टोला मुस्लिम बाहुल्य इलाका है, तो क्या पहलवान, दुकान बन्द करके... न... नहीं ऐसा नहीं होगा... तो फिर पहलवान ने दुकान क्यों नहीं खोली। मैं खड़ा कुछ समझ पाता कि पड़ौसी दुकानदार ने मुझे आवाज दी। "अरे शर्मा जी! क्या बात है...? कैसे परेशान हो, सब ठीक तो है?"

"मैं... हाँ... यह पहल... पहलवान ने दुकान क्यों बन्द कर रखी है...?"

"न मालूम क्यों नहीं खोली है। नेता जी हैं, मन्टोला तो नहीं चले गये।" "हाँ...हाँ न... न...।?" मैंने लगभग बुदबुदाते से ही कहा और वहाँ से लौट लिया। अपनी मनःस्थिति को पड़ौसी के सामने कैसे बयान करता। मन्टोला जाना खतरे से खाली नहीं था। इसी कशमकश में कब मैं अपने कमरे में आ गया पता ही नहीं चला। आखिर समय चक्र तो चलना ही था। हारे मन से ऑफिस चला गया। ऑफिस में भी

किसी काम का मन नहीं हुआ। पहलवान शाम को भी दिखाई नहीं दिया। ना ही उसका कोई फोन ही मिलकर दे रहा था।

तीन दिन बाद पहलवान की दुकान खुली। शहर के हालात लगभग सुधर रहे थे लेकिन, पहलवान उस दिन और दिनों की तरह, सामान्य और खुश नहीं दिख रहा था। बलिष्ठ और मजबूत शरीर के कंधों थके बैल की तरह झुके हुए थे। पलकें इस तरह बोझिल थीं मानो पिछले कई दिनों से सोया न हो। सूखे होठों पर पपड़ी जम रही थी। राजू दुकान पर नहीं दिख रहा था। पहलवान अभी भी उसी मुद्रा में पत्थर की मूर्ति बना बैठा था मानो वह वहाँ होकर भी वहाँ न हो।

मैंने पहलवान को टटोलना चाहा।

"क्या हुआ पहलवान...?" मैंने पहलवान के कंधे पर हाथ रखा। पहलवान ऐसे हड़बड़ाकर सचेत हुआ जैसे किसी डराबने सपने से बाहर आया हो। मुझे देखते ही वह बिना कुछ कहे बस रो पड़ा। मेरे मन में कहीं हथोड़े की सी चोटें पड़ने लगीं मामला कुछ ज्यादा ही गम्भीर हो गया लगता है।

"क्या हो गया... पहलवान?" मैं उसके सामने की बैंच पर बैठ गया। मुझे लगा वह कुछ बोल पाने की दशा में नहीं है। संकट के समय का एकान्त बहुत डरावना होता है, जो इन्सान को कितने ही बुरे ख्यालों से भरकर बहुत भारी कर देता है। अकेले में इन्सान लड़ता भी रहे लेकिन अपनों को करीव पाकर वह टूटकर बिखरने लगता है। तब वही बुरे ख्याल ऐसे ही बह निकलते हैं। यही पहलवान के साथ भी हो रहा था। कुछ देर के बाद पहलवान शान्त हुआ। वह मेरे लिए चाय बनाने उठा। "आज मैं चाय नहीं पियुंगा...?"

पहलवान ने लगभग सूज सी चुकीं आँखे, अपनी चौड़ी हथेलियों से सुखाईं। बाहर जाकर नाक में भर आये पानी को सिनक कर साफ किया। क्षण भर पहले का पहलवान अब बेहद हल्का लग रहा था। पहलवान वहीं मेरे सामने आ बैठा।

"बड़े बाबू! जिस बस को आग लगाई गई, उसमें मेरा बेटा था...। उसकी पूरी बात सुनने से पहले ही मुझे बिजली का सा झटका लगा था। "क्या... तो क्या...?"

"नहीं, वह ठीक है बड़े बाबू...।" सुनकर मैंने लम्बी साँस भरी।

"ओह गॉड...।"

"वैसे हुआ क्या था....? कुछ पता चला, राजू भी तो वहीं रहता है...?"

"नहीं बड़े बाबू राजू को कुछ नहीं पता, मैं बताता हूँ।"

"क्या...? तुम्हें पता है...?"

"हाँ...। मुझे पता चल गया।**"**

"कैसे...?"

"बड़े बाबू! मैं उस दिन, दोपहर बाद, खाना खाकर यहीं इसी बैंच पर झप्पी ले रहा था, कि यहाँ कोई चिल्लाया था। मन्टोला चुंगी के पास, शिशु मन्दिर की बस में कुछ मुस्लिमों ने आग लगा दी...। मैं हड़बड़ाकर उठा। बाहर यह खबर हवा में तैर रही थी। सोनू... सोचते ही मैंने झटके से दुकान बन्द की।"

"क्यों, राजू नहीं था क्या, उस दिन...?" मैंने बीच में ही पूछ लिया।

"राजू उस दिन अपनी अम्मा को दवा दिलवाने और घर पर कुछ सामान रखने गया था। मैं सीधे मन्टोला चुंगी की तरफ दौड़ा। ... हा ... हाकार मचा था बस जल रही थी। पुलिस ने लगभग सब बच्चों को निकाल लिया था। सभी लगभग ठीक थे। दो बच्चे गायब थे, जिनमें एक मेरा सोनू था। बडे-बाबू! मैं गुस्से और घबड़ाहट से थर-थर काँपने लगा था। पुलिस भीड़ को इधर उधर दौड़ा रही थी। मुझे न जाने क्या सूझा और मैं यह सोचता मामाजी के घर की तरफ भागा कि मेरा सोनू न मिला तो मैं पूरे मन्टोला में आग लगा दूँगा...।"

कहते-कहते पहलवान का आवेग बढ़ता जा रहा था। क्षणिक विराम के लिए मैंने उठकर एक गिलास पानी यह सोचकर लिया कि, बातों में थोड़ा अवरोध आने से, पहलवान का आवेग कुछ कम हो जायेगा। मैंने पानी पिया और फिर - "बड़े बाबू! मामाजी टी.वी. के सामने थे। लोकल चैनल पर समाचार आ गया था। मुझे देखते ही मामाजी बोले - "अरे आ पहलवान बड़े दिनों में आया, और आया भी तो देर से, देख लड़कों ने, अपना काम कर दिया।"

पहलवान एक दम शान्त हो गया और पैरों के नीचे की जमीन को ताकने लगा, अचानक उसने एक बार मुझे देखा और "हाँ... बड़े-बाबू! मुझे लगता है, यह सब, मामाजी का ही किया धरा था।"

"लेकिन क्यों...?"

"क्योंकि, वे कह रहे थे... 'देखा पहलवान, इसे कहते हैं पौलिटिक्स। मीडिया और शहर भर की जुँवा पर मुस्लिम लड़कों का नाम है... अब सारे हिन्दू मत एक हो गये, अब कौन रोकेगा हमारी सीट...?"

"मैंने कहा... लेकिन... उस बस में मेरा सोनू था मामाजी...।'

"तब...?" मेरी धड़कने बढ़ रही थी पहलवान की बातों को सुनकर।

"बड़े-बाबू! वे हमेशा की तरह कुछ गम्भीर हुए और बोले, "मात्रभूमि की सेवार्थ कुछ तो त्याग करने ही पड़ते हैं पहलवान।"

"मैं सुनकर चीख पड़ा... वह मेरा बेटा... मुझे नहीं करने कोई त्याग...। मेरा, थूकने का मन हुआ था बड़े-बाबू ,लेकिन अगर मेरा बेटा न मिला तो... कहता हुआ मैं वहाँ से पैर पटकता वापिस घर आ गया था।"

"पूरी रात मैंने खुली आँखों में टी.वी. से चिपक कर काटी। पत्नी गाय सी रंभाती और बस एक ही बात "मामा जी को क्यों नहीं कहते कि वे कुछ करें...?" अब मैं उसे क्या बताता, सिवाय अपने पर कसमसाने के। कहीं तो कोई सहारा नहीं दिख रहा था। रातभर लगता रहा जैसे पिताजी चीख रहे हैं 'यह तेरे कर्मों का फल है।'

मैंने बात बीच में काटी... **"पहलवान...! फिर, सोनू?"**

"सोनू दूसरे दिन घर आया था... पुलिस के साथ।**"**

"उसने कुछ बताया नहीं...**?"**

"दो दिन बाद बोल पाया मेरा सोनू। तब उसने बताया कि, उसे राजू और उसकी माँ ने बचा लिया था।**"**

"अपने इस राजू ने...? मैं खुद चिंहुक पड़ा था...।" मैं पहलवान से, राजू कहाँ है पूछता, कि सामने से टिफिन लिए राजू आता दिख गया। उसकी आँखें दहशत से अभी भी भरी दिख रहीं थीं। उसके नमस्ते का जवाब देते हुए मैने उसकी पीठ थपथपाई। "क्यों रे राजू... सोनू कहाँ मिला था तुझे...?" मेरे इतना कहते ही उसकी आँखों की कोरें फूट पड़ी। पहलवान ने उसके सिर पर हाथ रखकर उसे चुप कराया। सुबकते हुए राजू ने बताया -

"एकदम से हल्ला मचा। मैं बाहर निकलकर चुंगी की ओर दौड़ा, कि सामने सोनू बदहवास दौड़ा आ रहा था। उसके पीछे कुछ लोग थे, या जाने वैसे ही भगदड़ की वजह से सब दौड़ रहे थे। मैंने सोनू को गोद में उठाकर घर ले गया। माँ बहुत घबरा गई थी। अम्मा ने, सोनू के कपड़े उतारकर नंगा किया और छाती से लगाकर अपना पल्लू डालकर बैठ गई। सोनू भी एकदम चिपक गया अम्मा से। बहुत देर तक काँपता रहा था। उसकी, रोने की आवाज भी नहीं निकल पा रही थी।" कहते हुए राजू की आँखें गोल होकर ऐसे चमकती जा रही थीं जैसे उसे कोई मारने आ रहा हो। उसकी सांसें तेज हो गयीं थीं। मेरीं नजरें भी उसके चेहरे पर टिकीं थीं।

"सरजी! रात भर गलियों में भगदड़ रही। पैरों की आवाज दिल को कंपा देती थी। अम्मा को डर था कि कहीं कोई इस बच्चे को छीन न ले जाये। या पूछ न ले कि यह किसका है। वे भी काँपती रात भर जागती रहीं। सुबह, गली में घूमती पुलिस को मैंने बताया कि यह मेरे मालिक का बेटा है, तब पुलिस उसे घर पर लाई।"

दुकान पर ग्राहकों का आना-जाना शुरू हो गया था। "पहलवान जो हुआ सो हुआ, वक्त और परिस्थितियाँ थीं... अब खुद को सम्भालो।" कहकर मैंने सिसकियों के सैलाव को तोड़ने की कोशिश की थी।

"पहलवान! तुम्हें राजू के घर जाना चाहिए था।"

"पहलवान रूआंसा हो आया, "बड़े-बाबू! मैं राजू के घर गया था...।"

कहकर पहलवान रूक गया। उसकी नजरें कहीं नीचे गड़ गईं। वह जैसे फिर से पथराने लगा।

मैंने टोका "पहलवान बताया नहीं क्या हुआ...? "

पहलवान नजरें नीचे किये ही भर्रायी आवाज में कह रहा था।

"बड़े बाबू ... राजू... राजू...।" कहते हुए पहलवान ने राजू की तरफ देखा। राजू दुकान के बाहर कोने में वर्तन धोने में व्यस्त था।

"क्या हुआ राजू को...?" मेरे भीतर सनसनी सी दौड़ने लगी।

"पहलवान ने धीरे से बताया "बड़े बाबू... राजू मुसलमान है...।" कहते हुए पहलवान ने राजू की ओर ऐसे देखा जैसे यह जानना चाह रहा हो कि कहीं उसने सुना तो नहीं है।

"क्या.....?" मैं पहलवान की बातों पर विश्वास नहीं कर पाया। मेरी आँखें सिकुड़कर गोल हों गईं।

"हाँ बड़े बाबू!" कहकर पहलवान रेत के ढेर सा ढहने लगा। मैं उससे क्या कहूँ तय नहीं कर पा रहा था।

कुछ पल ऐसे ही बैठे रहने के बाद "न जाने भगवान मुझे कैसे क्षमा करेगा।" कहकर पहलवान ने अपनी आँखें सुखाईं और ग्राहकों में लग गया था।

समय के मरहम ने घाव भरे तो एक दिन पहलवान बोला "बड़े बाबू! राजू के लिए मन्टोला चुंगी के पार, तिराहे पर, एक चाय की दुकान खुलवानी है। मैं कुछ और तो नहीं कर सकता शायद इससे ही...।

"उसका गला भर गया था। आँखें डबडबा कर भर गईं थीं। मैं मौन रहा था।

आज उसका उद्घाटन है। दस बस चुके हैं अब मुझे निकलना चाहिए।